अपना झारखंड

अपना झारखंड परिवार प्रकाशन : वर्ष 1, अंक – 2, जुलाई 2010 सहयोग राशि : 5 रु0 मात्र

बिरसा की शहादत आज भी हमारा मार्गदर्शन करती है

9 जून बिरसा के शहादत का दिन है। 9 जून 1900 ई. को सुबह 9 बजे राँची जेल में उनका देहांत हुआ था। उसी दिन शाम को राँची डिस्टिलरी के पास हरमू नदी के किनारे उनकी अंतिम क्रिया संपन्न कर दी गई। फिलहाल उसी जगह 'बिरसा शहीद स्थल' का निर्माण किया गया है।

कौन थे बिरसा? क्या थी उनकी खासियत जिसके कारण आज उनको क्रांति का अग्रदूत माना जाता है? कब, कहाँ हुआ था उनका जन्म? उनकी शहादत को इतनी अहमियत क्यों दी जाती है?

बिरसा मुण्डा का जन्म 15 नवम्बर 1875 ई. को चलकद के पास बंबा गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम सुगना मुण्डा और माता का नाम करमी था। वे साधारण किसान थे। उन दोनों ने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया था। बिरसा मुण्डा की भी ईसाई धर्म में दीक्षा हुई। उनका नाम दाऊद रखा गया था। बुर्जू मिशन से उनकी पढ़ाई शुरू हुई। उनको बांसुरी बजाने का बड़ा शौक था। पढ़ाई के सिलसिले में वे 1890 ई. तक चाईबासा मिशन में रहे। वहाँ उनको फादर नोत्रोत का व्यवहार अच्छा नहीं लगता था। उन्होंने ईसाई धर्म छोड़ दिया। पढ़ाई भी छूट गयी। धीरे–धीरे उनको अपने समाज का दुःख–दर्द समझ में आने लगा। 1895 में उनको मुक्ति का एक मार्ग दिखाई

पड़ा। उन्होंने अपने गाँव–समाज की सेवा शुरू की। लोग उनको धरती आबा, बिरसा भगवान, क्रांतिदूत आदि कहने लगे। चलकद में भीड़ उमड़ने लगी।

झारखण्ड का आधुनिक इतिहास विद्रोहों का इतिहास है। बंगाल का मिदनापुर जिला 1760 ई. में ही अंग्रेजों के अधीन आ चुका था। मुगलों से बिहार–बंगाल की दीवानी मिलने के बाद 1767 ई. में अंग्रेजों ने मिदनापुर की ओर से धालभूमगढ़ (घाटशिला) पर आक्रमण किया। तीन–चार वर्षों के अन्दर पलामू किला पर भी उनका कब्जा हो गया। धीरे–धीरे झारखण्ड के राजा–महाराजा और जागीरदार उनकी अधीनता स्वीकार करने को विवश हुए। नया सनद देकर उनसे मालगुजारी वसूल की जाने लगी। यहाँ के लोग प्रतिरोध करते रहे। लेकिन अंग्रेजों का शिकंजा कसता गया।

1793 ई. में अंग्रेजों ने स्थायी बन्दोबस्ती (जमींदारी व्यवस्था) शुरू की। जंगलों पर भी जमींदारों का अधिकार हो गया। स्थायी बन्दोबस्ती के प्रावधानों के तहत मालगुजारी नहीं देने वालों की जमीन–जायदाद नीलाम की जाने लगी। झारखण्ड में जमीन–जगह पर कोई कर नहीं लगता था। जरूरत पड़ने पर चन्दा–बेहरी से काम चलता था। जंगल–जमीन पर आबाद करने वालों का पूरा अधिकार माना जाता था। इसे ही इस क्षेत्र में खुँटकट्टी, भुंइहरी और कोड़कर हक कहा जाता था। नये कानून के तहत मालगुजारी नहीं दे पाने के कारण जमीनें नीलाम की जाने लगीं। विलियम हंटर के अनुसार इस कानून के कारण तत्कालीन बंगाल की आधी से अधिक जमीन सूदखोर–महाजनों के हाथ चली गयी। यहाँ के लोग अपने खानदानी हकों से बेदखल होने लगे। इसी के प्रतिकार में यहाँ बगावतों का सिलसिला शुरू हुआ। यह सिलसिला यहाँ आज भी जारी है।

बिरसा मुण्डा के पहले बुण्डू–तमाड़ क्षेत्र में 1793 से 1820 तक रूदू मुण्डा, कोन्ता मुण्डा, बिसुन मानकी ने इस आंदोलन की अगुवाई की। 1831–32 में सिंगराय–बिंदराय मानकी ने बंदगाँव से कोल–विद्रोह का मशाल जलाया। 1855–56 में संथालपरगना में सीधू–कान्हू ने संथाल हूल का सूत्रपात किया। 1857 में विश्वनाथ शाहदेव, गणपत राय, शेख भिखारी, नीलाम्बर–पीताम्बर ने अंग्रेजों के पसीने छुड़ाये।

इस लड़ाई का अगला चरण 1860 में शुरू हुआ जो सरदारी लड़ाई के नाम से विख्यात है। इस लड़ाई का चरम विस्फोट बिरसा आंदोलन में हुआ। बिरसा ने अपने पुरखों के अधिकारों की रक्षा के लिए अपने लोगों को संगठित किया। उनका मुख्य नारा था 'अबुआ दिसुम, अबुआ राज' यानी हमारे इलाके में हमारा राज रहेगा। उन्होंने अंग्रेजों और उनके सहायकों को यहाँ से भगाने का संकल्प लिया। उनका आह्वान था–'हेंदे रम्बरा केचे केचे, पुंडी रम्बरा केचे केचे'। यानी काले और गोरे सभी साहबों को मार भगाओ।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बिरसा ने अपने लोगों की कमजोरियों और बुराइयों को दूर करना जरूरी समझा। इसके लिए उन्होंने 'बिरसा धर्म' चलाया। आन्दोलन के दिनों में उन्होंने इस काम की जिम्मेवारी सीमा मुण्डा को दी थी। राजनीतिक आंदोलन का जिम्मा डोंका मुंडा को दिया गया था। भरमी मुंडा, गया मुंडा उनके अभिन्न साथी थे। गाँव–गाँव में प्रचारक भेजे जाते थे। उन्होंने स्वयं चुटिया नागफेनी, नवरतनगढ़, पालकोट की यात्रा की और लोगों को जागृत किया।

बिरसा आन्दोलन के दो चरण थे। पहले चरण की शुरुआत 1895 में हुई थी। इसमें सरदार आन्दोलन के अग्रणी गिदयुन एलियाजर और प्रभुदयाल उनके सहयोगी थे। 24–27 अगस्त की रात को उनलोगों ने कई जगहों पर आक्रमण की तैयारी की थी। पर सरकार को इसकी भनक मिल गयी। पुलिस अधीक्षक मीयर्स से ने चलकद में बिरसा को गिरफ्तार कर जेल भिजवा दिया। नवम्बर 1985 में उनको दो वर्ष कैद और 50 रु. जुर्माना की सजा हुई। 30 नवम्बर 1897 को बिरसा हजारीबाग जेल में मुक्त हुए। उनको कड़ी ताकीद के साथ चलकद भेजा गया। इधर युद्ध की तैयारी चल रही थी। 24 दिसम्बर 1899 को आन्दोलन का दूसरा चरण शुरू हुआ। चक्रधरपुर, खूँटी, कर्रा, तोरपा, तमाड़, बसिया आदि में बिरसा के सशस्त्र

अनुयायी अपनी मुक्ति के लिए निकल पड़े। इसका अन्तिम मोर्चा शैल रकाब, डोमबारी बुरू में केन्द्रित था। राँची के डिप्टी कमिश्नर एच.सी. स्ट्रोटफील्ड ने यहाँ मोर्चा संभाला। दूर–दूर से सेना मंगायी गयी। अनेक लोग हताहत हुए। आंदोलन बिखरने लगा। संतरा के जंगलों में बिरसा धोखे से पकड़े गये। उन पर और उनके साथियों पर मुकदमें चले। इसी मुकदमे के दौरान 9 जून 1900 ई. को सुबह 9 बजे राँची जेल में उनका देहावसान हुआ।

बिरसा एक गरीब किसान का बेटा था। उनकी पढ़ाई–लिखाई अधिक नहीं थी। फिर भी 25 वर्ष की अवस्था में उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद को चुनौती दी थी। उनका नारा, 'अबुआ दिसुम अबुआ राज' आज भी जिन्दा है, प्रासंगिक है। इस क्रांतिदूत की शहादत आज भी हमारे लिए मार्गदर्शक है। हम उनको श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। आज झारखण्ड की मुक्ति के लिए एक नहीं; दर्जनों बिरसा मुण्डाओं की जरूरत है। क्या आप इसके लिए तैयार हैं?

– विसेश्वर प्रसाद केसरी

सम्पादक मंडल :
जसवा कच्छप
शंभू महतो
मदन मोहन
अरविन्द अंजुम
दिलीप वाहिनी
कपूर बागी
राजदेव राजु
सियाशरण शर्मा एवं
सीताराम शास्त्री

सलाहकार मंडल :
डा0 विशेश्वर प्रसाद केसरी
विनोद
संग्राम हेम्ब्रम
वनमाली महतो
शैलेन्द्र महतो
कुमार चन्द्र मार्डी
सोमा मुण्डा
नलय राय एवं
डा0 रोज केरकेट्टा

विषय सूची

क्रम	विषय	पेज नं०
1.	बिरसा की शहादत.....	1
2.	झारखंड को चाहिए ईमानदार नेतृत्व.....	4
3.	हम झारखंड को जनता का झारखंड कैसे बनायेंगे?.....	6
4.	शुरू हुई जनगणना.....	8
5.	भूषण कम्पनी के विरोध में जनता कर्फ्यू.....	10
6.	झारखंडी अपने होनहारों पर ध्यान दें.....	12
7.	कम्पनीपरस्त गणतंत्र के लिए ग्रीन हंट.....	13
8.	इन देशद्रोहियों को पहचानिए.....	15
9.	झारखंड में वनों का विनाश.....	16
10.	झारखंड के लिए एक बड़ा सबक है भोपाल हादसा...	17
11.	चांडिल बांध में रेडियल गेट लगाने का विरोध.....	20

कार्यालय : द्वारा मंथन, सामुदायिक विकास के पीछे, ग्वाला बस्ती, पो.: इन्द्रानगर, टेल्को, जमशेदपुर - 831008
फोन : 9470392677, 9472687275 **मुद्रक : अनिता प्रिंटर्स**, 3/98, काशीडीह, साकची जमशेदपुर

झारखण्ड को चाहिये ईमानदार नेतृत्व

झारखण्ड को ईमानदार नेतृत्व चाहिये। यह एक सामान्य एवं असामान्य एक ही साथ दोनों प्रकार का कथन है। सामान्य इसलिए कि झारखण्ड ही क्यों पूरे देश को, विशेषकर दलितों, आदिवासियों, महिलाओं, गरीबों व वंचितों को ईमानदार नेतृत्व की जरूरत है। इस सामान्य कथन से कोई इंकार नहीं कर सकता है। आज भी बेइमानी का बोलबाला इतना नहीं बढ़ा है कि सब लाज–शरम धोकर खुलेआम बेइमानी की वकालत करने लगें हालांकि समाज में आचरण इस कथन के विपरीत चल रहा है। इस कथन की असामान्यता इसी द्वंद्व में छिपी हुआ है। समूचे देश के राजनैतिक नेतृत्व के अधःपतित चरित्र एवं राँची में चल रहे प्रहसन एवं लूट–पाट ने ईमानदार नेतृत्व की जरूरत को एक कठिन चुनौती में बदल दिया है।

1987 की एक घटना है। निर्मल महंतो की हत्या के बाद झारखण्ड समन्वय समिति (झासस) एवं आजसू के नेतृत्व में झारखण्ड आंदोलन ने जुझारू तेवर अपना लिया था। झासस में आजसू, झारखण्ड पार्टी सहित 50 से ज्यादा राजनैतिक–सामाजिक संगठन शामिल थे। उनमें झारखण्ड आंदोलन की एक प्रमुख शख्सियत भी अपने संगठन का प्रतिनिधित्व करते थे। संयोगवश वे उस वक्त एक प्रतिष्ठित औद्योगिक संस्थान में पदाधिकारी भी थे। आंदोलन के दौरान ही उन्हें कंपनी की ओर से प्रमोशन दिया गया। इस खबर से नाराज एवं उत्तेजित होकर आजसू के कुछ कार्यकर्त्ता उनके पास पहुँच कर विरोध जताने लगे। शायद उनकी धारणा थी कि आंदोलन का निजी हित में दुरुपयोग किया गया है। संभव है कि उन्हें स्वाभाविक प्रक्रिया में ही प्रमोशन मिला था। परंतु परिस्थितिवश आजसू कार्यकर्त्ता जब विरोध जताने पहुँचे तो उन्होंने पूछा कि प्रत्येक वर्ष इस संस्थान में सैकड़ों लोगों को प्रमोशन दिया जाता है, जिनमें से अधिकांश या लगभग सभी गैर–झारखंडी होते हैं, तो आप कभी भी विरोध करने नहीं गये; परंतु एक आदिवासी, एक झारखण्डी को प्रमोशन मिला तो आप विरोध करने पहुँच गये। इस लाजवाब तर्क ने लोगों को निरुत्तर कर दिया और वे वापस लौट गये।

जो तर्क प्रमोशन के बारे में उस वक्त दिया गया था, अब वह सर्वव्यापी व आम हो गया है। आजकल वंचित तबके का हर नेता अपने भ्रष्ट आचरण की रक्षा के लिए इसी प्रकार के तर्कों का उपयोग ढाल की तरह कर रहा है। झारखण्ड में प्रखंड स्तर के भी झारखण्डी नेता खासतौर से आजसू व झामुमो के, स्कॉर्पियो या अन्य लग्जरी वाहनों का उपयोग करते हैं। दो–चार बंदूकधारी सुरक्षा के नाम पर आगे–पीछे मंडराते रहते हैं। खाना व पीना महंगे होटलों में होता है। ऐसा ताम–झाम तो शासक वर्ग की पार्टियों के नेता भी नहीं दिखाते हैं! अगर कोई इस पर आपत्ति या प्रश्न करता है तो वही लाजवाब तर्क जड़ दिया जाता है कि अन्य पार्टियों समुदायों–समाजों–क्षेत्रों के नेता तो बरसों से यही कर रहे हैं, लूट रहे हैं, ऐशो–आराम में मशगूल हैं, उन्हें तो कोई कुछ नहीं कहता। बस, नेताओं के दुराचरण पर शंका रखने वाले भी चुप हो जाते हैं।

ऐसे तर्क दलितों, पिछड़ों, अल्पसंख्यकों में भी समान से प्रचलित है। सवाल उठता है कि क्या सवर्ण या तथाकथित मुख्यधारा के स्थापित नेतृत्व के आचरण का अनुसरण करना ही वंचितों के

नेतृत्व का आदर्श है या इसे बदलना। वंचितों का नेतृत्व उन्ही मूल्यों एवं व्यवस्था को अपना लक्ष्य मानकर वैसा ही बनने की कोशिश कर रहा है जिसका कि आजतक वह शिकार होता रहा है। मुकुट पहनने, अकेले कुर्सी पर बैठने, चरण–स्पर्श करवाने की लालसा किन मूल्यों का प्रतिनिधित्व करती है। स्पष्ट रूप से ये सामंती व सवर्ण मूल्य हैं। जमींदार, पूंजीपति, अफसर, भ्रष्ट व्यापारी, सवर्ण ही आज वंचित समुदाय एवं उसके नेतृत्व के रोल मॉडल बने हुए हैं।

क्या वंचित तबके के ऐसे नेता जनता को शोषण से मुक्ति के संघर्ष का नेतृत्व कर सकते हैं? झारखण्ड में जनता एवं संसाधनों की लूट में यहाँ के नेता भी धड़ल्ले से शामिल हैं। ठेकेदारों से पैसे लेकर ये नेता मजदूरों का हक मारने में शामिल हो जाते हैं। जमीन दलाली के धंधे में बड़े–बड़े झारखंडी नेता शामिल हैं। तमाम किस्म के अवैध धंधे करने वालों के साथ इनका मधुपान का संबंध है। कोयला, लौह अयस्क, बॉक्साइड व पत्थर खनन के वैध–अवैध कारोबार में वे हिस्सेदार हैं। प्रदूषण फैलानेवाली कंपनियों के पार्टनर हैं। सरकार के स्तर पर पहुंचे विधायक और मंत्री तो एमओयू के द्वारा पूंजीपतियों को खुले हाथ से झारखण्ड की संचित संपदा–बहुमूल्य खनिज व सामान्य लोगों की आजीविका के मूल स्रोत जमीनें सौंप दे रहे हैं। झारखण्डी जनता के शोषण व लूट में से हिस्सा उनको मिलता है। इस प्रकार से ये भी झारखण्डी जनता के कष्टों को बढ़ाने में योगदान करते हैं। शोषण के लिए जिम्मेवार नेता बन गये हैं जबकि इनके ऊपर शोषण से मुक्ति का संघर्ष चलाने की जिम्मेवारी थी।

नेताओं के खुलेआम जनविरोधी आचरण के प्रति जनता में कोई गंभीर शिकायत नहीं दिखती है। वे सोचते हैं कि जब चारों–तरफ चोर–लुटेरे भरे पड़े हैं तो घर वालों का ही खिलाफ क्यों करें? ये तो कम से कम अपने तो हैं! एक साथ उठते–बैठते हैं, एक ही भाषा में बात करते हैं, हमे हेय दृष्टि से नहीं देखते हैं। इसलिए जब ऐसे नेता निजी या पारिवारिक समारोह करते हैं तब हजारों की संख्या में लोग उसमें शामिल हो लेते हैं।

यही कारण है कि राँची में जिस राजनैतिक अधःपतन का नमूना पेश किया जा रहा है उसके प्रति जनता में जैसी प्रतिक्रिया होनी चाहिए थी, नहीं हो रही है। विधायकों का बाजार लग गया है, सरकार गिरती–उठती है बिना वजह के। फिर भी झारखण्डी जनता बेगानी बनी हुई है। इन सबका खामियाजा जनता को ही भोगना पड़ेगा। जनता की यह जान– अनजाने दी जाने वाली स्वीकृति एक दिन आत्मघाती साबित होगी।

स्पष्ट है कि झारखण्ड का नेतृत्व भी देश में प्रचलित आम नेतृत्व की तरह ही भ्रष्ट एवं नाकारा है। परन्तु यह याद रहे कि झारखण्डी जनता शोषित व उपेक्षित जमात है जिसको व्यवस्था के चंगुल से मुक्ति चाहिए। समता एवं इन्सानियत के मूल्यों के आधार पर गठित समाज व्यवस्था ही मुक्ति का ठिकाना हो सकती है। इसके लिए एक दीर्घकालिक संघर्ष की आवश्यकता है जो कभी भ्रष्ट नेतृत्व में नहीं लड़ी जा सकती। भ्रष्ट नेतृत्व जनता एवं यहाँ के संसाधनों को बेचकर अपना घर तो भर सकती है पर संघर्ष को मंजिल तक नहीं पहुंचा सकता सादगी, ईमानदारी के लिए प्रतिबद्ध गरिमामय नेतृत्व ही जनता की मान–प्रतिष्ठा स्थापित कर सकता है, समाज के नवनिर्माण में सकारात्मक योगदान कर सकती है। झारखण्ड को, देश को, वंचितों–गरीबों को ऐसे ही नेतृत्व का तकाजा है। हमें उसी का इंतजार है। अब जनसंघर्ष के गर्भ से आदर्शों व विचारधारा से लैस सिद्धांतवादिता के जरिये ही उस नेतृत्व का जन्म होगा।

– अरविंद अंजुम

हम कैसे झारखण्ड को जनता का झारखण्ड बनायेंगे?

आजादी की लड़ाई के समय बहुत सारे लोगों ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि आजाद भारत की आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था की तस्वीर कैसी होगी। तब एक मात्र लक्ष्य था "अंग्रेजों से मुक्ति"। नतीजा क्या निकला? प्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी शासन से मुक्ति तो मिली लेकिन ब्रिटिश या आम साम्राज्यवादी पूँजी से मुक्ति नहीं मिली। स्वतंत्रता आंदोलन के नेता सत्ता में जाकर इस लूट में साझीदार बन गये। झारखण्ड प्रांत की लड़ाई में भी कमोबेश यही बात हुई।

इसलिए आज जो लोग झारखण्ड की शोषित–उत्पीड़ित जनता के संघर्ष का नेतृत्व कर रहे हैं, उन्हें इस बात पर विचार करना ही होगा – "हमारा झारखण्ड कैसा होगा?", "हम कैसे इस झारखण्ड को यहाँ की जनता का झारखण्ड बनायेंगे?"

एक रास्ता है जिस पर झारखण्ड मुक्ति मोर्चा, झारखण्ड पार्टी, आजसू या अन्य झारखंड नामधारी संगठन बढ़ रहे हैं। दूसरा एक रास्ता एनजीओ संगठनों का है जो साम्राज्यवादियों या पूंजीपतियों से प्राप्त "अनुदान" राशि से आंदोलन को "मदद" करने की बात कर रहे हैं और गैर–पार्टी, गैर–राजनीतिक आंदोलन की वकालत कर रहे हैं। मौलिक बदलाव के सवाल पर ये लोग चुप हैं या गोल–मटोल अस्पष्ट अवधारणाएं प्रस्तुत करते हैं। इस मामले में हमारा विचार क्या होना चाहिए?

झारखण्ड राज्य एक सांस्कृतिक और भौगोलिक इकाई है, लेकिन आर्थिक–राजनैतिक एवं प्रशासनिक रूप से यह भारत का एक हिस्सा है भले ही इसकी स्वायत्तता जितनी भी कम हो।

साम्राज्यवाद की मदद से पूंजीपतियों एवं जमींदारों का भारत में एक गैर–जनतांत्रिक व्यवस्था कायम है। इस परिस्थिति में झारखण्डी जनता का अपना शासन किस सीमा तक हो सकता है, हमें सोचना है। उस सीमा तक अपने ध्येय को हासिल करने के लिए हमें संघर्ष भी करना है। लेकिन पूरी तरह झारखंड की जनता का राज स्थापित करने के लिए हमारे पास दो रास्ते हैं। एक यह है कि भारत से अलग होकर हम पूर्णरूपेण अपनी इच्छानुसार झारखण्ड का निर्माण करे। दूसरा रास्ता है कि पूरे देश में जनतांत्रिक व्यवस्था कायम करने तथा अपने सपनों के झारखण्ड के निर्माण के लिए हम साथ–साथ संघर्ष करें। तीसरा कोई रास्ता नहीं है। एक गैर–जनतांत्रिक भारत में जनता का झारखण्ड नहीं बन सकता।

देश से अलग होने के रास्ते को हम सभी लोगों ने परित्याग कर दिया है। तब हमारे पास दूसरा रास्ता बचा है। हमें एक "जनतांत्रिक भारत" तथा "जनता के झारखण्ड" दोनों के निर्माण के बारे में सोचना ही होगा।

झारखंडी जनता के राज का अर्थ है-

"झारखण्ड की अर्थव्यवस्था और शासन-व्यवस्था पर झारखण्डी जनता का पूर्ण अधिकार"

अर्थव्यवस्था के अंदर उद्योग, व्यापार, जमीन, जंगल, खनिज सभी आते हैं। झारखण्ड में बड़े उद्योग ज्यादातर सरकारी हैं और कुछ निजी भी। निजी मालिक लगभग सभी गैर–झारखंडी हैं। खनिजों पर राज्य का अधिकार है या कुछ बड़े पूंजीपतियों का। उदारीकरण के बाद राज्य नियंत्रित खदानों को भी निजी पूंजीपतियों को दे दिया जा रहा है। सरकारी उपक्रमों के शेयर निजी पूंजीपतियों के हाथों बेचा जा रहा है। अब जो नये बड़े उद्योग खुल रहे हैं वे ज्यादातर निजी हैं। वनों पर राज्य का एकाधिकार है। गाँव में झारखंडियों के पास भूमिगत जल बचा है। लेकिन शहर के इर्द–गिर्द जिस प्रकार एपार्टमेंटों (बहुमंजली आवासीय इमारतों) का निर्माण हो रहा है, उससे अगल–बगल के ग्रामीण बुरी तरह प्रभावित हो रहे हैं। एपार्टमेंट वाले डीप बोरिंग करके भूमिगत जल को खींच ले रहे हैं। इर्द–गिर्द के गाँवों के तालाब सूख रहे हैं। बांध बाँधकर नदियों के पानी को शहर में ले जाया जा रहा है। सुवर्णरेखा–खरकई के दोमुहानी से पानी भूषण कम्पनी को देने की योजना है, जिसकी दूरी दोमुहानी से 28 किमी. है। जिंदल भी पानी सुवर्णरेखा से लेगा। टाटा को पहले से ही सुवर्णरेखा से पानी मिल रहा है। इस तरह झारखण्डी जनता भविष्य में भारी जल संकट में पड़ जायेगी। जल–संरक्षण की योजना लागू किये बिना उद्योग खोलने की इजाजत एक बड़ा अन्याय है। नियमतः सारे एपार्टमेंटों में जल–संरक्षण कार्यक्रम को लागू करना है, लेकिन

यह नहीं के बराबर हो रहा है। पहले ही झारखंडियों की काफी जमीन सरकार, उद्योगों या गैर–झारखंडियों के हाथों में चली जा चुकी है। अर्थव्यवस्था पर झारखण्डियों का अधिकार कायम करने के लिए यह जरूरी है कि छीनी गयी जमीनें वापस ली जायें और बची हुई को बचाया जाये।

छीनी गयी जमीनें वापस कैसे हासिल की जायें? राज्य के अधीन चलनेवाले बड़े–बड़े उद्योग हैं – जैसे रेलवे, इस्पात, ताम्बा, यूरेनियम .... आदि। ऐसा माना जाता है कि राज्य सबका है, अतः राज्य की सम्पत्ति में झारखण्डी जनता का भी अधिकार शामिल है। इसका लाभ झारखण्डी जनता को भी मिलता है। लेकिन लाभ की जाँच करके देखिए। झारखण्ड क्षेत्र में कार्यरत राजकीय उद्योगों में अफसरों या अन्य स्थायी कर्मचारियों में झारखण्डियों की संख्या नहीं के बराबर है। है तो ठीका मजदूरों के रूप में है। इस प्रकार झारखण्डियों को प्राप्त लाभ का अंश यहाँ नगण्य है। राजकीय उद्योग के उत्पादों, जैसे– इस्पात, कोयला, बिजली, का बड़े पैमाने पर उपभोग निजी पूंजीपति करते हैं, जो गैर–झारखण्डी हैं। पानी, इस्पात, बिजली के कुछ हिस्से का उपयोग शहर का मध्यम वर्ग भी करता है। ये भी झारखण्डी नहीं हैं। राज्य के आय से वेतन तथा सुविधाएं नौकरशाहों एवं नेताओं को मिलती हैं। नेताओं में अब 70 प्रतिशत झारखण्डी हो गये हैं जो वे गैर–झारखण्डी शासक वर्ग से समझौता कर चुके हैं। इसलिए राज्य की सम्पत्ति में झारखण्डी जनता का हिस्सा नहीं के बराबर है।

यदि राज के स्वरूप में बदलाव आये, केन्द्र को सीमित अधिकार रहे, राज्य के उपक्रमों में झारखण्डी जनता को जनसंख्या के अनुसार प्रतिनिधित्व दिया जाये, तभी राज्य की सम्पत्ति में झारखण्डी जनता को उचित हिस्सा मिलना सम्भव है। लेकिन आज आर्थिक क्षेत्र में निजी पूंजीपतियों का बर्चस्व बढ़ाया जा रहा है। अगर यह नीति जारी रही तो झारखंडी जनता का अपने संसाधनों पर अधिकार और भी अधिक छिनता चला जायेगा। इसलिए आर्थिक उदारीकरण के खिलाफ झारखण्डी जनता को संघर्ष करना होगा।

राज्यसत्ता के महत्वपूर्ण अंग हैं – विधायिका, कार्यपालिका, व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका। आज मीडिया भी महत्वपूर्ण अंग बन गया है। इन सारे अंगों में झारखण्डी जनता को जनसंख्या के अनुसार प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। शिक्षा से लेकर रोजगार तक झारखण्डी भाषाओं को यहाँ सर्वोच्च स्थान मिलना चाहिए। तभी झारखंडी राष्ट्रीयता की आय भारत की अन्य राष्ट्रीयताओं के समान स्थिति में पहुँचेगी।

झारखंडी जनता का राज एवं झारखंड के मेहनतकशों का राज

आज जब हम "झारखण्डी जनता के राज" शब्दों का प्रयोग करते हैं तो यह ठीक उसी प्रकार के राज की कल्पना है जैसे – बंगाल में बंगाली जनता का राज; बिहार में बिहारी जनता का राज। इन सभी राज्यों में सत्ता पर बिहारी, बंगाली, ओडिया जनों के एक छोटे–से धनीवर्ग का एकाधिकार है तथा उसी वर्ग का राज है। आम मजदूर–किसान तो लूट एवं शोषण के शिकार हैं। इसलिए इस अवधारणा के तहत झारखण्डी राज की सीमा होगी।

झारखण्ड का आम आदमी क्या है? खेतिहर मजदूर, छोटे–मध्यम किसान, ठेका मजदूर या छोटे दस्तकार। इनका झारखण्ड कैसे बनेगा? यह महत्वपूर्ण सवाल है।

यह तभी सम्भव है जब शोषक वर्ग की सम्पदा को छीनकर उस पर झारखंडी जनता का आधिपत्य कायम हो। आधिपत्य का रूप क्या होगा? अन्य राज्यों से आकर झारखण्ड में बस गये मेहनतकशों को भी इस आधिपत्य में हिस्सेदार बनाना होगा। वर्तमान पुलिस और नौकरशाही व्यवस्था को पूर्णतः समाप्त करना होगा। जब तक यह प्रशासनिक व्यवस्था कायम रहेगी "ग्राम गणराज्य" का सपना अधूरा रहेगा। ग्रामसभा के पास सीमित अधिकार रहेंगे। पुलिस प्रशासन बलपूर्वक कानूनी तथा गैरकानूनी ढंग से सभी मामलों में हस्तक्षेप करता रहेगा।

पूँजीपति राजाओं–सामंतों से ज्यादा चतुर हैं। शासन चलाने की जनता की आकांक्षा को या तो इन्होंने कुंद कर दिया है या दिग्भ्रमित कर दिया है। अर्थव्यवस्था तथा राजनैतिक–प्रशासनिक व्यवस्था पर अपना एकाधिकार कायम रखते हुए वे जनता का "जनतंत्र" बनाना चाहते हैं जो असम्भव है। झारखण्डी जनता का राज कायम होने के लिए पहली महत्वपूर्ण शर्त है – हर चीज पर से इन शोषकों के एकाधिकार को न सिर्फ कमजोर करना होगा बल्कि पूरी तरह खतम करना होगा।

– सियाशरण शर्मा

शुरू हुई जनगणना

15वीं जनगणना का कार्य शुरू हो गया है। यह जनगणना कई मायनों में पिछली जनगणनाओं से अलग है। इस बार जनगणना के जरिये नेशनल पापुलेशन रजिस्टर का निर्माण किया जायेगा। साथ ही साथ 15वीं जनगणना में लोगों को प्राप्त पेयजल, शौचालय आदि जैसी सुख–सुविधाओं की जानकारी के लिए खास कुछ प्रश्न भी शामिल किये गये हैं। जनगणना में देश के नागरिकों की गिनती होती है। सख्या के अलावा, नागरिकों की सामाजिक, आर्थिक, सांरकृतिक दशा के बारे में भी सरकार पता करती है। किस क्षेत्र विशेष या वर्ग विशेष को सरकार से अधिक मदद की जरूरत है और पिछली जनगणना के बाद बनायी गयी योजनाओं का कितना असर हुआ है और अब विकास के लिए कैसी योजनाओं की आवश्यकता है, इन बातों का भी पता चलता है।

किसी भी विषय पर शोधकार्य संबंधित आंकड़ों की जानकारी पर निर्भर होता है। जनसंख्या का रिकॉर्ड सरकारी योजनाओं के लिए महत्वपूर्ण है ही, साथ ही जनगणना के आंकड़े अर्थशास्त्र, मानक, विज्ञान, सांख्यिकी आदि विभिन्न शोध कार्यों के लिए यह बेहद उपयोगी होते हैं। व्यवसायी और राजनैतिक दल भी इन आंकड़ों के आधार पर अपनी योजनाएं बनाते हैं।

एन.पी.आर. (राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर) का निर्माण देश में पहली बार किया जा रहा है। जनगणना से संबंधित तथ्यों के साथ–साथ इसमें देश के नागरिकों से संबंधित सामान्य जानकारी भी शामिल होगी। इस योजना के अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति को एक नागरिक पहचान–पत्र दिया जायेगा। इस का एक नंबर होगा। भारत में मतदाता सूची, ड्राइविंग लाइसेंस, पासपोर्ट, पेन नंबर, गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले व्यक्तियों की सूची, राशन कार्ड, किसान कार्ड जैसे कई डेटा बेस उपलब्ध हैं इनकी सीमित उपयोगिता है। काफी समय से देश में किसी ऐसे डेटा बेस की उपयोगिता पर बल दिया जा रहा है जिससे व्यक्ति से संबंधित कई प्रकार की जानकारियों का एक ही स्थान में उपलब्ध कराया जा सके। एनपीआर इस आवश्यकता को पूरा करेगा।

भारत जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में दूसरा स्थान रखता है। इसलिए यहाँ जनगणना का कार्य आसान नहीं है। जनगणना के लिए बहुत अधिक कर्मचारियों की जरूरत होती है। इस जनगणना में क्षेत्रीय भाषाओं को भी वरीयता दी गई है। इस बार 14 करोड़ सूचीपत्र प्रकाशित कराये गये हैं जो 16 भाषाओं में हैं। इसके अलावा 81 लाख नियम पुस्तिकायें भी 18 भाषाओं में प्रकाशित करायी गयी हैं।

नेशनल पापुलेशन राजिस्टर में सभी नागरिकों की बायोमीट्रिक पहचान सुरक्षित रखी जाएगी।

इस बार की जनगणना में प्रत्येक गृहस्वामी को दो फार्म दिये जा रहे हैं जिनमें 50 प्रश्न रहते हैं। इन फार्मो में से एक फार्म में सामान्य घरेलू जानकारियों से संबंधित कुल 35 प्रश्न हैं। दूसरा फार्म एनपीआर से संबंधित है। इसमें 15 प्रश्न हैं। ये प्रश्न व्यक्ति से संबंधित सामान्य जानकारियाँ हासिल करने के लिए है जैसे– नाम, लिंग, जन्म तिथि, जन्म स्थान, वैवाहिक स्थिति, पिता का नाम, माता का नाम, पति या पत्नी का नाम, मकान नम्बर, कब से निवास कर रहे हैं, स्थाई पता, व्यवसाय, राष्ट्रीयता, शैक्षिक योग्यता, परिवार के मुखिया से व्यक्ति का नाता।

15वीं जनगणना में जाति को शामिल करने के मामले में सरकार और विभिन्न दलों की बीच अच्छी–खासी बहस छिड़ गयी है। सभी सांसद भी अगड़ों और पिछड़ों में बंटे हुए नजर आ रहे हैं। भारत में जाति–व्यवस्था बहुत पुरानी है। इसके पहले जाति–आधारित जनगणना सन् 1931 में की गयी थी। आजादी के बाद जाति–व्यवस्था को खत्म करने की कोशिशें असफल रहीं। ये प्रयास अंततः वोट बैंक बनाने में तब्दील हो गयीं। जाति–आधारित जनगणना पर लोगों की अलग–अलग राय हैं। इसके सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही नतीजे होंगे। सकारात्मक

तर्क यह है कि इससे तरह–तरह के आंकड़े उपलब्ध हो जाएंगे और इसका लाभ कमजोर जातियों को मिलेगा जो सरकारी योजनाओं का समुचित लाभ नहीं ले पाते हैं। नकारात्मक बात यह कही जा रही है कि इससे जातीय विद्रोह बढ़ेगा, अलगाव की भावना बढ़ेगी। लोगों का यह भी तर्क है कि जनगणना में आज भी धर्म पूछा जाता है। लोग आसानी से बेहिचक जवाब भी देते हैं। केवल जनगणना से जाति को बाहर रखने से अपने आप जाति–व्यवस्था खत्म नहीं होने वाली है। क्षेत्रीय दलों की जाति–आधारित राजनीति ने राष्ट्रीय पार्टियों को काफी कमजोर कर दिया है। और आज केन्द्र की राजनीति में भी जाति को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। चुनाव में टिकट बंटवारा के समय उम्मीदवार की जाति पर खास ध्यान दिया जाता है।

जनगणना में सरना धर्म कोड की मांग इस बार भी नजरअंदाज की गयी जिसके कारण सरना धर्म मानने वाले आदिवासी समुदायों में काफी आक्रोश है। सरना धर्म आदिवासियों का अति प्राचीन धर्म है जो प्रकृति की पूजा करते हैं। भारत जैसे धर्मनिरपेक्ष राज्य में सरना धर्म को भी उचित सम्मान मिलना ही चाहिए। राज्य सरकारें कभी भी इस मामले पर गंभीर नहीं हुईं। कई संगठनों ने इस मामले पर राँची और दिल्ली में धरना प्रदर्शन भी किये। फिर भी केन्द्र सरकार पर कोई असर नहीं पड़ा। राज्य सरकार ने भी इस मुद्दे पर कोई दबाव नहीं डाला। इसके लिए एक ही उपाय दिखता है कि लोग संगठित होकर अपनी मांगों को जोरदार ढंग से रखें और अपत्ति सहित जनगणना में अपना नाम दर्ज अवश्य कराएं।

जाति–आधारित जनगणना से आदिवासी एकता पर भी खतरा हो सकता है। आदिवासी समुदाय के अन्दर हो, मुण्डा, संथाल आदि जातियों में कहीं न बँट जायें।

आदिवासियों और मूलवासियों की जनसंख्या के पिछड़े कई दशकों से लगातार घटने के आंकड़े मिल रहे हैं। इसका मुख्य कारण है विस्थापन और पलायन और बाहरी आबादी का लगातार प्रवेश। यह झारखंडी समुदाय के सामने सबसे बड़ी चुनौतियों में एक है।

मदन मोहन

भूषण पावर एंड स्टील कंपनी के विरोध में 'जनता कर्फ्यू'

झारखण्ड की तमाम सरकारों ने अब तक देशी–विदेशी पूँजीपतियों के साथ कुल सौ से अधिक एम.ओ.यू. किये हैं। झारखण्ड के विकास के नाम पर खनिजों की लूट ही इनका असल उद्देश्य है। भूषण पावर एवं स्टील प्लांट भी उन्हीं में से एक है, जो अपना प्लांट पोटका क्षेत्र में लगाना चाहता है। घोषणा के मुताबिक यह 900 मेगावाट का पावर प्लांट और 30 लाख टन का इस्पात कारखाना लगाने जा रही है। इसके लिए उसको 2951 एकड़ जमीन चाहिये। सरकार की अनुमति और दलालों के अथक प्रयास के बावजूद अब तक मात्र लगभग 400 एकड़ जमीन का जुगाड़ करने में कम्पनी सफल हुई है और उसका म्यूटेशन भी नहीं हुआ है। प्लांट के लिए पानी की व्यवस्था भी एक बड़ी समस्या है। खबर है कि पानी 29 कीलोमीटर दूर से लाया जायेगा। प्लांट के निदेशक एच.सी. वर्मा का दावा है कि दो साल में उत्पादन शुरू हो जायेगा।

दूसरी ओर भूषण कम्पनी ने अब तक अपने इस प्लांट के लिए ग्राम सभा से अनुमति नहीं ली है। कानून के अनुसार बिना ग्राम सभा की अनुमति के कोई भी गाँव की जमीन तो नहीं ही ले सकता है, बल्कि गाँव में कोई भी कार्यक्रम नहीं चला सकता, भले ही वह विकास से भी संबंधित क्यों न हो। सरकार द्वारा कम्पनी को प्लांट लगाने की अनुमति तब तक नहीं दी जानी चाहिये जबतक प्लांट लगाने के लिए ग्रामसभा मंजूर नहीं करती। लेकिन झारखण्ड, उड़ीसा और छत्तीसगढ़ की सरकारें ग्रामसभा कानून की अवहेलना करती आ रही हैं। पोटका में भी 16 मई को साफ दिखा कि एक ओर हजारों–हजार आदिवासी–मूलवासी प्लांट के विरोध में थे तो दूसरी ओर मुश्किल से पचास की संख्या में दलाल और कम्पनी के अधिकारी सैकड़ों पुलिस और दर्जनों सरकारी अधिकारियों के साथ कम्पनी के शिलान्यास के लिए जुटे थे। इसके पहले भी कम्पनी के अधिकारियों ने दो बार दूसरी जगहों पर शिलान्यास करने की तैयारी की थी लेकिन ग्रामीणों के जोरदार विरोध के कारण विफल हुए थे। और इस तीसरे प्रयास को भी 'जनता कर्फ्यू' द्वारा विफल कर दिया गया।

पोटका के ग्रामीणों ने 15 मई की शाम से ही 'विस्थापन विरोधी एकता मंच', खुंटकटी रैयत संघर्ष समिति, भूमि रक्षा वाहिनी, भूमि सुरक्षा संघर्ष समिति, भूमि सुरक्षा समिति, झारखण्ड महिला संघर्ष समिति इत्यादि के नेतृत्व में 'जनता कर्फ्यू' लगा दिया था। जनता कर्फ्यू के तहत कई जगह रोड को पारम्पारिक हथियारों के साथ जुटकर ग्रामीणों ने बंद कर दिया था। पोटका प्रखंड को 21 घंटे तक ग्रामीणों ने अपने कब्जे में घेरे रखा। 15 मई की रात में पोटका पुलिस ने आंदोलन को कमजोर करने के लिए इंडिजीनस पीपुल्स फोरम के संयोजक सह मानवाधिकार कार्यकर्त्ता ग्लैडसन डुंगडुंग, सी.एन.आई–एस.बी.एस. के जोय टुडू, विजय मुंडा, अरविन्द किस्कू, और बादल सरदार को पकड़ कर थाना ले गई। रात भर पूछ–ताछ की और हिदायत दी कि वे लोग आंदोलन से दूर रहें और पोटका छोड़ दें। इस धमकी के साथ ही 16 मई की सुबह उन लोगों को छोड़ा गया।

16 मई की सुबह भूषण कम्पनी के सीएमडी संजय सिंगल को हेलिकॉप्टर से आना था। उनके लिए हैलीपैड भी शिलान्यास स्थल के पास ही बनाया गया था। सीएमडी को ही शिलान्यास करना था और भूमि पूजन भी होना था। 15 मई से चल रहे आंदोलन को तीव्रता और 16 मई की सुबह से शिलान्यास स्थल पर जुट रहे आंदोलनकारियों को देखते हुए सीएमडी ने अपना कार्यक्रम रद्द कर दिया। इस तरह पोटका के ग्रामीणों की यह पहली विजय हुई। 16 मई को सूर्य निकलते ही ग्रामीण अपने परम्पारिक हथियारों के साथ शिलान्यास स्थल की ओर कूच करने लगे। भूमि पूजा आरम्भ होने से पहले ही पूजा स्थल (शिलान्यास स्थल) पर आंदोलनकारियों का कब्जा हो गया। और इस तरह पूजा स्थल में जनता कर्फ्यू लागू हो गया, जनता ने वहाँ रखी शिलान्यास सामग्री को हटा दिया। हारकर पूजा स्थल से कम्पनी के अधिकारियों को

भाग जाना पड़ा। रोलाडीह के पास सुबह में पारम्परिक हथियारों से लैस जनता ने शिलान्यास कार्यक्रम में कंपनी के अतिथि के रूप में आये कांग्रेस के विधायक बन्ना गुप्ता, भाजपा की विधायक मेनका सरदार और झारखण्ड मुक्ति मोर्चा के स्थानीय नेता सुनील महतो को रोक दिया। जनता ने कम्पनी के तरफदार जनविरोधी नेताओं को आगे नहीं बढ़ने दिया, अंत में उनको धूप में ही पैदल जाना पड़ा।

पूजा (शिलान्यास) स्थल पर हजारों की संख्या में ग्रामीण दिन के दो बजे तक डटे रहे। शिलान्यास स्थल पर ही एक सभा का आयोजन हुआ, जिसमें विभिन्न नेताओं ने अपने वक्तव्य रखे। सभा के बाद ग्रामीण दो भागों में बँट गये; एक भाग पोटका की ओर बढ़ा और दूसरा भाग रोलाडीह की ओर विजय मुद्रा में कूच कर गया।

पुनः रोलाडीह में दो जगह सभाएं आयोजित की गयीं। इन सभाओं में दूर से आये विभिन्न संगठनों के प्रतिनिधियों ने ग्रामीणों को अपने विचार और अनुभव सुनाये। वंक्ताओं ने कुछ मूल सवाल रखे, जैसे – सरकार ग्रामसभा कानून के खिलाफ क्यों है? अगर यह जनतंत्र है तो सरकार हजारों हजार जनता का साथ न देकर इक्के–दुक्के पूंजीपतियों के पक्ष में क्यों रहती है? इन पूंजीपतियों के मुनाफे के लिए अगर 29 कीलोमीटर दूर से पानी लाया जा सकता है तो पोटका के किसानों के खेतों की सिंचाई के लिए पानी की व्यवस्था सरकार क्यों नहीं करती? भारत के विकास के लिए कितना लोहा और कितना अनाज की जरूरत है, इसमें तालमेल क्यों नहीं है? अगर अभी 30 साल के अन्दर सारा लौह अयस्क निकालकर निर्यात कर देंगे तो क्या 30 साल के बाद हमें खुद लौह अयस्क का आयात नहीं करना पड़ेगा? आंकड़े बताते हैं कि पहले उद्योग में एक करोड़ की लागत पर 10 से 15 लोगों को नौकरी मिलती थी, लेकिन अब इतनी लागत पर 4 से 5 लोगों को भी नौकरी नहीं मिल पाती; लेकिन इतनी लागत कृषि क्षेत्र में और कृषि–वन आधारित कुटीर उद्योगों में लगाने से लगभग 100 लोगों को रोजगार मिलता है। फिर भी सरकार इस ओर क्यों ध्यान नहीं देती? उद्योग में मुनाफा के लिए जंगल को उजाड़ा, नदियों को प्रदूषित किया, वायु को भी प्रदूषित किया। ऐसी बरबादी करके जरूरत से ज्यादा औद्योगीकरण पर जोर क्यों? अभी तक जो विस्थापित हुए उनके पुनर्वास और मुआवजे पर सरकार कोई ध्यान नहीं देती और पुनः विस्थापन करने के लिए क्यों जोर लगाती है? जो उद्योग बंद हैं या जो अधिग्रहीत जमीन उद्योग के काम नहीं आयी, उसे सरकार जमीन कानून के मुताबिक भूमि के मालिक को वापस क्यों नहीं दे देती? उन जमीनों को बेचकर मुनाफा कमाने का अवैध मौका कम्पनी को क्यों दिया जाता है? हमारी संस्कृति और अस्तित्व जल–जंगल–जमीन पर आधारित हैं; हम आदिवासी–मूलवासी बाजार पर निर्भर होकर अपनी संस्कृति और अस्तित्व को नहीं बचा सकते। फिर भी सरकार हमें बार–बार क्यों विस्थापित करने पर तुली है? इन सवालों पर विचार करते हुए अब ग्रामीण संसद और विधान सभा में बैठे बड़ी–बड़ी राष्ट्रीय या क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टियों के जनविरोधी चरित्र को पहचानने लगी है। इन पार्टियों के नेता पूंजीपतियों के हित में किसानों के विरुद्ध नीतियाँ निर्धारित कर रहे हैं और आदिवासियों–मूलवासियों के अस्तित्व को संकट में डाल रहे हैं। ग्रामीणों ने देखा कि सत्ता के लिए आपस में लड़ने वाले कांग्रेस–भाजपा और झारखण्ड मुक्ति मोर्चा कैसे भूषण की तरफदारी में किसानों के खिलाफ एकजुट होकर भूषण कम्पनी की चाटुकारिता कर रहे थे। लेकिन जन आंदोलन ने यह दिखा दिया कि लगभग हजार लोगों के लिए भूषण ने जो खाना बनवाकर रखा था, उसे खाने के लिए कंपनी को सौ लोग भी नहीं मिल रहे थे। जोरदार विरोध के कारण भूषण को पूजा कराने के लिए स्थानीय पंडित भी नहीं मिला। कोलकाता से पंडित मंगाकर पूजा स्थल से बहुत दूर चोर की तरह छिप कर पूजा करना पड़ा।

सभा के अंत में जनता कर्फ्यू की समाप्ति की घोषणा की गयी। तमाम एमओयू रद्द करने के नारों के साथ ग्रामीण अपने हथियारों के साथ संकल्पित मुद्रा में अपने–अपने गाँव को लौट गये।

• शंभू महतो

झारखंडी अपने होनहारों पर ध्यान दें!

जमशेदपुर से सटे पटमदा प्रखण्ड के बागुड़दा गांव के एक गरीब घर का बच्चा शीतल कर्मकार इस बार माध्यमिक परीक्षा में जिला टॉपर हुआ। जी हां, हाल के दिनों में यूपीएससी के जरिये प्रशासनिक सेवा, आइ.आइ .टी. की प्रवेश परीक्षा हो या अन्य स्कूली परीक्षाओं में गरीबों के बच्चे भी अच्छी संख्या में सफल हो रहे हैं। इसे आप उनकी सत्ता में हिस्सेदारी की भूख भी कह सकते हैं या विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग को दी गयी एक चुनौती।

शीतल की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है, पर उसकी इच्छा है इंजीनियर बनने की। आज की परिस्थिति में गरीब बच्चों के लिये उच्च शिक्षा में प्रवेश की गुंजाइश नहीं है। हमारे देश में कार ऋण 5 प्रतिशत ब्याज पर मिलता है पर शिक्षा ऋण 10–15 की दर पर। इसी से प्रतिभा होने के बावजूद शीतल कर्मकार की महत्वाकांक्षा खटाई में पड़ गयी। इसे देखते हुए एक हिन्दी अखबार ने सभाज से शीतल के लिए मदद की अपील की। इसकी अच्छी प्रतिक्रिया हुई। मदद के लिये कई व्यक्ति और संस्थाएं आगे आयीं। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि उनमें एक भी व्यक्ति या संस्था झारखण्डी नहीं थी। यह काफी चिंतनीय बात है। झारखण्ड बनने के बाद झारखण्डी समुदायों के कई लोग सम्पन्न हुए हैं परन्तु सामाजिक कार्यों में शायद ही किसी ने हाथ आगे बढ़ाया है। पिछले साल भी घाटशिला के दो आदिवासी छात्र आइ.आइ.टी. की प्रतियोगिता में उत्तीर्ण हुए, वह भी आरक्षण का फायदा लिये बिना योग्यता के आधार पर। वे भी गरीब थे। मदद के लिए काफी भटकने और अखबारों के माध्यम से झारखण्डी नेताओं की काफी फजीहत होने के बाद एक ने उनकी पढ़ने की व्यवस्था कराई।

मेरा कहने का मुख्य उद्देश्य यह है कि आज जो समाज या संस्था हमारे उत्थान का प्रोजेक्ट लिये फिर रहा है, चाहे राजनैतिक क्षेत्र में हो या सामाजिक क्षेत्र में, उनका समाज को आगे ले जाने का काम नगण्य है। सामाजिक क्षेत्र में जो लोग कार्य कर रहे हैं उनका मुख्य काम शादी–विवाह के कार्यों और देश–विदेशों में सम्मेलनों का आयोजन करना है। इन लोगों ने समाज के नाम पर बड़े–बड़े संस्था–संगठन बना रखे है लेकिन सिर्फ नाम के लिए। राजनैतिक क्षेत्र के लोग साल भर अबुआ–अबुआ (अपना) करते हैं, परन्तु उनके कार्य से लगता है कि उनके अपने तो के. डी. सिंह, जिंदल, मित्तल जैसे उद्योगपति ही हैं।

कुछ लोग साल भर भाषा के नाम पर हल्ला मचाते हैं पर भाषा के विकास के लिए कुछ नहीं करते। इसी कारण झारखण्ड में किसी आदिवासी भाषा में एक भी पत्र–पत्रिका नजर नहीं आती, जबकि पड़ोसी राज्य पश्चिम बंगाल के कोलकाता नगर में एक लघु पत्रिका मेले में 550 स्टाल लगे थे यानी 550 पत्र–पत्रिकाओं के स्टाल। एक अनुमान के तहत वहां लगभग 10 हजार पत्र पत्रिकायें निकलती हैं।

इनके अलावा कुछ लोग हैं जो भीख मांगना अपना मुख्य काम और हक बनाये हुए हैं। जन्म से मृत्यु तक विभिन्न अवसरों पर सिर्फ मांगते ही रहते हैं।

निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि हमारे लोग जाति समाज के नाम पर बड़ी–बडी संस्थाएं, संगठन बना कर वोट की राजनीति करते हैं। संगठन, संस्था, पार्टी अपने मुख्य काम से भटक कर "अन्य" कामों में व्यस्त रहते हैं। कम से कम आज समाज में उभर रहे प्रतिभाओं को पहचान कर उन्हें सँवारने का काम तो करें, कुछ भविष्य तो बने।

– दीपक

कंपनीपरस्त गणतंत्र के लिये ग्रीन हंट

गृहमंत्री पी. चिदंबरम ने कहा था कि 'अब आदिवासियों के बच्चे स्कूल में पढ़ सकेंगे, उनके पैरों को जूते मिल जायेंगे, उनका कुपोषण खत्म हो जायेगा और उन्हें स्वास्थ्य सेवाएं मयस्सर हो जायेंगी।' उनका यह भी कहना है कि वे आदिवासियों को म्युजियम संस्कृति से बाहर निकालना चाहते हैं। पी. चिदंबरम के सीने में आदिवासियों के लिये सचमुच दर्द है या वे उपर्युक्त कथन की आड़ में कॉरपोरेट खनन कंपनियों के हितों को ही आगे बढाने के लिये बेताब हैं? एक कॉरपोरेट वकील के रूप में चिदंबरम कॉरपोरेट खनन कंपनियों के हितार्थ मुकदमा लड़ चुके हैं। ऐसी स्थिति में शेक्सपियर की उक्ति याद आ रही है– 'जब दुश्मन चुंबन लेने लगे, तब वह समय खौफ खाने का होता है।' वित्त मंत्री बनते ही चिदंबरम ने वेदांता समूह की औरंगाबाद स्थित कंपनी स्टार लाइट ऑप्टिकल टेकनॉलॉजिस्ट्स लि. पर केन्द्रीय उत्पाद शुल्क–कस्टम शुल्क की बकाया राशि को वसूलने से अपने हाथ खींच लिये थे। कर राहत भी वे देने में आगे रहे हैं। इतना ही नहीं, वित्तमंत्री बनते ही चिदंबरम ने जिस 'एफडीआई' की मंजूरी दी थी, वह मारिशस की एक कंपनी ट्विनस्टार होल्डिंग्स को स्टारलाइट के शेयर खरीदने की थी, जो वेदांता का हिस्सा है। ऊपरी तौर पर ऑपरेशन ग्रीन हंट माओवादियों के विरुद्ध चलाया जा रहा है, लेकिन यह असलियत में आदिवासियों की खनिज संपदा से भरी जमीनें कॉरपोरेट घरानों को देने के लिये ही किया जा रहा है। आदिवासी कहते हैं कि जान दे देंगे, पर जमीनें नहीं देंगे। वे अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए प्रतिरोध कर रहे हैं।

कुछ ही वर्ष पहले छत्तीसगढ़ के बीजापुर में नक्सलियों से भिड़ने को तैयार सुरक्षाकर्मी आदिवासियों को समझा रहे थे– हम चाहते हैं कि आप खुली हवा में सांस ले सकें। आप जंगली कंदमूल खाकर न जियें, आपका भी विकास हो, पक्के मकान हों। मोटरगाड़ी में सफर करें। आपके बच्चे भी शहरी बाबू की तरह रहें। आप सबको किसी का डर, आंतक न हो। तो आप हमारे अभियान को सफल बनाइए! नक्सलियों का साथ मत दीजिए। और सब कुछ जानने के लिये हमारे कैंप में आइये।' परन्तु इसके तीसरे ही दिन अरिपाल में करीब 40 आदिवासी नक्सली बताकर मार डाले गये, लाशों को आनन–फानन में जलाकर निशान तक मिटा डाले गये। छत्तीसगढ़ में 644 गांवों को खाली कराकर ध्वस्त कर दिया गया है। वहां हत्या और बलात्कार का नंगा नाच हो रहा है।

भारत सरकार के महाधिवक्ता ने सुप्रीम कोर्ट को बताया कि मंत्रिमंडल ने नक्सल प्रभावित इलाकों के विकासार्थ 7200 करोड़ की राशि स्वीकृत की है। इंदिरा गांधी के शासन काल में भी ट्राइबल सब–प्लान बना था, जिसके सूत्रधार थे डॉ0 बीडी शर्मा। एसटी–एससी आयुक्त बनाये जाने पर उन्होंने इनकी दशा पर एक रिपोर्ट तैयार की। रिपोर्ट विस्फोटक थी, तभी तो सरकार उसे संसद में रखने से कतराती रही। डॉ0 बीडी शर्मा ने 1990 में ही सरकार को चेताया था– आदिवासी इलाकों में सद्भावना का माहौल तभी तैयार हो सकता है, जब 'विकास' की चपेट में कराह रहे लोगों की ओर पहले ध्यान दिया जाये। आगे बढ़ने की जल्दबाजी के बजाय पहले उनको उनकी व्यवस्था चलाने का जिम्मा दिया जाये और पूरे विकास में सहभागी बनाया जाये, भले ही विकास की गति धीमी पड़ जाये, या कुछ समय के लिये हमें क्यों न वहां रुक ही जाना पड़े। यह जरूरी और वांछनीय भी है।

शर्माजी ने चेतावनी दी कि 'सावधानी न बरती गयी, तो आदिवासी इलाकों में उफनते असंतोष और भडकते विद्रोहों के सामने कहीं विकास का पहिया चरमराकर पूरी तरह बैठ जा सकता है।' शर्माजी की चेतावनी नक्कारखाने में तूती की आवाज बनकर रह गयी, जिसका कुफल आदिवासियों को और देश को भोगना पड़ रहा है। राष्ट्रपति को संबोधित अपनी रिपोर्ट की भूमिका में वे लिखते हैं– 'राज्य जिंदगी के अधिकार के संघर्ष में लगे उन लोगों के खिलाफ बल–प्रयोग करने में भी कोई संकोच नहीं महसूस करता है, जबकि उनकी रक्षा का पूरा भार राज्य पर है।' एक भारी विडंबना की स्थिति बन गयी है। क्या चिदंबरम को इस रिपोर्ट को नहीं पढ़ना चाहिए और अपनी कार्रवाइयों पर पुनर्विचार नहीं करना चाहिए? मगर अफसोस, सोये हुए को जगाया जाता है, जागे हुए को नहीं। सत्ता पूरी तरह गुनहगार है। मनीला टाइम्स के संपादक तर्जी विटासी ने 'द ब्राउन साहब' में लिखा है कि उपनिवेशों से गोरे साहबों के जाने के बाद वहां जिन भूरे साहबों का शासन हुआ है वे अपनी जनता से कटे हुए घोर असंस्कृत लोग है। सार्त्र ने कहा है कि ये अपने पश्चिमी मालिकों की प्रतिमूर्ति न होकर भोंड़ी नकल (कैरिकेचर) हैं। चिदंबरम को याद रखना चाहिए कि उच्चकोटि के मानव समाजों का निर्माण मुनाफाखोरों द्वारा कभी नहीं होता है। के. आर. नारायणन ने देशवासियों, खासकर सुप्रीम कोर्ट, का आह्वान किया था कि वह समाज के कमजोर वर्गों की हिफाजत करे क्योंकि हमने जो विकास का पथ चुना है वह अनुसूचित जनजातियों–अनुसूचित जातियों को उत्पीड़ित करता है और उनके अस्तित्व को ही खतरे में डालता है। पर मदांध शासकों ने अनसुनी कर दी। हमारे सत्ताखोर अमेरिकी राष्ट्रपति के इस कथन को मानकर चलते हैं कि जो फोर्ड के हित में है, वही अमेरिका के हित में है। यह कॉरपोरेटपरस्ती की इंतिहा है।

मार्च 2008 में ग्रामीण विकास मंत्रालय की रिपोर्ट– कमिटी ऑन एग्रेरियन स्टेट रिलेशंस एंड अनफिनिश्ड टॉस्क ऑफ लैंड रिकॉर्म ने तो सरकार को नंगा ही कर दिया है। इसका उपशीर्षक कहता है– आदिवासियों की जमीन हड़पने की कोलबंस के बाद की सबसे बड़ी कार्रवाई – जनजातियों पर हो रहे जुल्मोंसितम का लोमहर्षक आलेख है। अगस्त 2008 की योजना आयोग की विशेषज्ञ समिति नक्सली समस्या को राजनीतिक–आर्थिक –सामाजिक परिस्थिति की देन मानती है। नक्सली समस्या को बुनियादी तौर पर सामाजिक न्याय, समता, संरक्षण, सुरक्षा व स्थानीय विकास के लिये संघर्ष के रूप में देखती है। विस्थापन व पुनर्वास की अनुपयुक्तता को जिम्मेदार ठहराती है। नाकारा भ्रष्ट प्रशासन को दोषी मानती है। रिपोर्ट कहती है– हमारे यहाँ शिक्षा, स्वास्थ्य, मकानों, आवासों की दो दुनियाएं हैं।

एक रिट याचिका पर सुनवाई में सुप्रीम कोर्ट ने आदिवासियों को गांवों से बाहर निकालना बंद करने का आदेश दिया है। उनके पुनर्वास का आदेश–निर्देश दियां है। सलवा जुडुम व दोषी अधिकारियों का पता लगा कर एफआईआर दर्ज कर दंडित करने एवं आदिवासियों को मुआवजा देने का निर्देश दिया है। चिदंबरम–रमन सिंह द्वारा जुल्मो सितम बढ़ा दिये गये हैं। उत्पीड़क उत्पीड़ितों का शिकार करके उत्सव मना रहा है। यह कमाल का गणतंत्र है! कॉरपोरेटपरस्त गणतंत्र!!

प्रो. काशीनाथ सिंह, राँची

इन देशद्रोहियों को पहचानिए

आज हमारे झारखण्ड और भारत देश की स्थिति चिन्ताजनक है। हमारे विद्वान अर्थशास्त्री प्रधानमंत्री हमें आंकड़ों की भाषा से बता रहे हैं कि देश तरक्की कर रहा है। देश का 'सकल घरेलू उत्पाद' बढ़ रहा है, देश की 'विकास दर' भी बढ़ रही है और 'प्रति व्यक्ति आय' भी बढ़ती जा रही है। देश में अरबपतियों और करोड़पतियों की संख्या भी बढ़ रही है। योजना आयोग मानता है कि देश की मात्र लगभग 37 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा के नीचे है, जबकि सरकार द्वारा ही गठित अर्जुन सेनगुप्ता आयोग ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि देश की 77 प्रतिशत आबादी मात्र 20 रू0 में प्रति दिन पर गुजारा करने को मजबूर है। देश की जनता किन बातों पर विश्वास करे! अगर 'ईमानदार' छवि वाले प्रधानमंत्री पर विश्वास कर भी लिया जाये तो इससे देश की जनता का पेट नहीं भरता, बेरोजगारों को नौकरी नहीं मिलती। देश के इस विकास से किसानों की आत्महत्याएं नहीं रुक रहीं, न ही मजदूरों की छँटनी और कारखानों की बन्दी रुक रही है। वास्तविकता तो यह है कि देश का विकास नहीं हो रहा है, देश को चन्द देशी–विदेशी शक्तियों के हाथ में बेचा जा रहा है।

सरकार महंगाई तक को नियंत्रित नहीं कर पा रही है, बल्कि बाजार ने सरकार को अपने नियंत्रण में कर रखा है; सरकार बनाने की होड़ में लगे सभी राजनैतिक दलों पर बाजार का नियंत्रण है। इसीलिए पूर्व वित्त मंत्री चिदम्बरम ने सरे आम बयान दिया था कि देश का विकास होगा तो महंगाई भी बढ़ेगी। वर्तमान वित्त मंत्री ने भी संसद में बजट पर बहस के दौरान महंगाई के सवाल पर पूछा – कौन पार्टी देश का विकास नहीं चाहती है? इसका जवाब संसद में किसी ने भी नहीं दिया।

शिक्षा और चिकित्सा का इस कदर निजीकरण और व्यवसायीकरण कर दिया जा रहा है कि अच्छी शिक्षा और चिकित्सा आम लोगों के हाथों से बाहंर हो गयी है। उच्च शिक्षा और उच्च स्तरीय चिकित्सा तो सिर्फ सम्पन्न वर्ग के लिए सुरक्षित है। लिहाजा उच्च स्तरीय नौकरियां भी सम्पन्न वर्ग के लिए सुरक्षित हैं।

हमारा देश इन बीमारियों से तो पहले भी जूझ रहा था, लेकिन 1991 की 'नयी आर्थिक नीति' के लागू होने के बाद से 'विश्व बैंक', 'अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष' और 'विश्व व्यापार संगठन' के माध्यम से अमेरिका ने अपना शिकंजा कस दिया है। यही है उदारीकरण और वैश्वीकरण। गरीब देशों के सारे संसाधनों को धनी देश निगलते जा रहे हैं। कारखाना, खनिज, बाजार, खेत, जंगल, पानी और श्रम शक्ति पर डाका डाल दिया गया है। हमारे देशद्रोही राजनेता हमारे संसाधनों को लुटा रहे हैं।

झारखण्ड में भी इन्हीं नीतियों के तहत सौ से अधिक एम.ओ.यू. हुए हैं, और प्रांत एवं केन्द्र में बैठी सत्ताधारी और विपक्ष की सभी पार्टियाँ मिलकर झारखण्ड और देश को बेच रहे हैं। इसी को "विकास" कहा जा रहा है। हमें अपने प्यारे झारखण्ड और भारत देश को बचाने के लिए इस जनविरोधी विकास नीति को रोकना होगा; देर हो जायेगी तो भावी पीढ़ियां हमें माफ नहीं करेंगी।

–जसवा कच्छप

झारखण्ड में वनों का विनाश

पूंजीवादी समाज की मुनाफाखोरी प्रवृत्ति के चलते वनों का भारी पैमाने पर विनाश हो रहा है और यह मानव समाज को विनाश की दिशा में ले जा रहा है। इस गंभीर मसले को समझने की एक कोशिश यहां की गयी है।

भारत के वनों को उनकी प्रकृति के आधार पर पाँच वर्गों में विभाजित किया गया है। सदाबहार वन, मानसूनी वन, मरूस्थलीय वन, पर्वतीय वन एवं डेल्टा वन। हमारे झारखण्ड में खासकर मानसूनी या पर्णपाती वन पाये जाते है। मानसूनी वनों के वृक्षों के पत्ते ग्रीष्मकाल में सूखकर झड़ जाते हैं। और वर्षा ऋतु के आगमन के साथ ही वृक्ष हरे–भरे हो जाते हैं। वन व्यापक प्राकृतिक संसाधन हैं। वन से मनुष्य को अनेक प्रकार की आवश्यक वस्तुएँ, सुख–सुविधाएँ और ऑक्सीजन मिलते हैं। वन कार्बन–डाइ–ऑक्साइड का अवशोषण करके पर्यावरण में प्रदूषण को कम करता है।

वनों में निवास करने वाले लोगों के जीवन के लिए वनों का बहुत अधिक महत्व है। जंगलों से गोंद, छप्पर बनाने के सामान, फल, जड़ी–बूटियां, औषधियां, लकडियाँ, तेल, चारा, व्यापारिक महत्व के फूल, कंदमूल, मसाला आदि प्राप्त होते हैं।

वन विनाश के कई कारण हैं। ऐसे तो कीटों के आक्रमण से भी वृक्ष नष्ट होते हैं। कीट–पतंग पेड़ों में छेद बना डालते हैं, जिसके कारण उनमें घुन लगता है। पशु–पक्षी उगते हुए पौधों, अंकुर, प्रौढ वृक्षों की छाल, पत्तियाँ, जड़ों और तनों को खाकर नष्ट करते हैं। तेज गति से आनेवाली आंधियों और तूफानों के कारण पेड़ जड सहित उखड़कर गिर जाते हैं। वनों में आग लगने से भी वृक्ष नष्ट हो जाते हैं। लेकिन वनों के विनाश में मनुष्य की भूमिका सबसे प्रमुख है। मनुष्य ने वनों को वाणिज्य–व्यापारिक हितों, उत्खनन कार्य, ईंधन की प्राप्ति, निर्माण कार्य आदि के लिए भारी पैमाने पर वनों को बरबाद किया है। सड़कें बनाने, रेल की पटरियाँ बिछाने, तथा उद्योग, नदी–घाटी परियोजना एवं बाँधों के निर्माण के लिए विशाल वन क्षेत्रों को साफ कर दिया गया है। विगत तीस वर्षों में सड़क निर्माण के लिए 73 हजार हेक्टेयर, उद्योगों के लिए 14.6 लाख हेक्टेयर तथा अन्य कार्यों के लिए 99 लाख हेक्टेयर वन क्षेत्रों को साफ किया गया है। खनिज उत्खनन तथा बडे बांध निर्माण के लिए विशाल वन क्षेत्र साफ कर दिये गये हैं। खनन कार्य से बड़े–बड़े गड्ढे बन जाते हैं। एस जमीन का पुनः उपयोग सम्भव नहीं होता है।

सृष्टि के उदय–काल से लेकर आज तक मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति और स्वार्थ लाभ के लिए प्रकृति का असीमित दोहन किया है। भारत में ब्रिटिश काल से ही बडे पैमाने पर वनों को उजाड़ना प्रारंभ हुआ था। आज हालात यहाँ तक पहुँच गये हैं कि वनों के समक्ष अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न उठ खड़ा हुआ है। अतः वनों की दीर्घकालिक रक्षा और विकास के लिए जल्द–से जल्द ध्यान दिया जाना जरूरी है। इसके लिए अति आवश्यक है कि वनों में अंधाधुंध और अविवेकपूर्ण खनन एवं कटाई बंद की जानी चाहिए। वन पर निर्भर समुदायों को वनों पर अधिकार और वनों की रक्षा का भार सौंपना चाहिए। वनों की कटाई की भरपाई के लिए पुनः वन रोपण में तेजी लानी चाहिए। वनों को बचाने के लिए यथा शीघ्र जन अभियान के माध्यम से चेतना जगाना होगा। हमें सचेत होना होगा। तभी जाकर हम वनों की रक्षा कर सकते हैं। गाँव के लोगों को जागरूक होना होगा। ग्रामीणों की आवश्यकता के अनुसार ही वनों के वृक्षों को काटा जाना चाहिए। वनों की रक्षा के लिए गाँव के नौजवानों को आगे आना होगा।

–कुमार दिलीप

झारखण्ड के लिये एक बड़ा सबक है भोपाल हादसा

2 दिसम्बर, 1984 की आधी रात, यानी 2 दिसम्बर के अंत और 3 दिसम्बर की शुरुआत के वक्त भोपाल में एक बड़ा औद्योगिक हादसा हुआ था। यह हादसा दुनिया के सबसे बड़े हादसों में से एक था। उद्योग, खासकर बड़े उद्योग को और आज तो बहुराष्ट्रीय उद्योग को, विकास का समानार्थी माना जाता है। इस तरह से इसे विकासीय हादसा भी कहना गलत नहीं होगा।

उस रात युसीआइएल (युनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड) के कीटनाशक कारखाने की एक टंकी से 40 टन से ज्यादा मिक गैस (मिथाइल आइसोसाइलेट) और अन्य जहरीले गैस रिसकर हवा में फैल गये थे। इस जहरीली गैस ने प्रलय मचा दिया। उस रिसाव के कारण लगभग 20 हजार लोगों की मौत हुई और लगभग 6 लाख लोग गंभीर रूप से पीड़ित हुए। वे आजीवन अपंगता, अक्षमता के शिकार हैं। पीड़ितों के बाद की पहली और दूसरी पीढ़ी में भी उस रिसाव के हानिप्रद शारीरिक प्रभाव देखने को मिल रहे हैं।

मुकदमा 23 साल तक चलने के बाद 7 जून, 2010 को भोपाल की सीजेएम अदालत ने इस हादसे पर दायर मुकदमे का फैसला सुनाया है। फैसले के तहत युसीआइएल के 7 जिम्मेवार अधिकारियों को (1–2 लोग मर चुके हैं) 2–2 साल की कैद और एक–एक लाख रु. के जुर्माने की सजा दी है।

20 हजार लोगों की मौत का कारण बनने वाले अपराधियों को साधारण सड़क दुर्घटना के लिए दी जाने वाली सजा सुनायी गयी। सुप्रीम कोर्ट ने पहले ही निर्देश दे रखा था दोषी साबित होने पर भी अभियुक्तों पर अधिकतम सिर्फ दो साल की ही सजा वाली धारा लगायी जा सकती जो असावधान और तेज गाड़ी चालन के कारण भूलवश हुई मौतों के मामले में ड्राइवरों पर लगायी जाती है।

गैस रिसाव कोई संयोग नहीं था। लापरवाही और दायित्वलंघन की सारी हदें पार की गयी थीं जिससे यह हादसा हुआ था। यह घोषित तकनीकी सलाह रही है कि भारी मात्रा में लम्बे समय तक मिक गैस का भंडारण नहीं होना चाहिए। आपात्कालीन स्थानांतरण के लिए एक टंकी स्टैंडबाइ पोजीशन में खाली रखी जानी चाहिए। हर हाल में 15°C से नीचे (0°C सबसे अच्छा) के तापमान पर मिक को संग्रहित रखना चाहिए। एक बार में 3–4 टन मिक की ही जरूरत कीटनाशक बनाने के लिये होती है। तब भी तीन टंकियों में (प्रतिटंकी 42 टन) भंडारण होता था। 7 जनवरी 1982 को वर्क्स मैनेजर ने रेफ्रिजरेशन सिस्टम बंद करने का फैसला लिया। मई 1982 में यूसीसी की निरीक्षण टीम का दौरा हुआ था। टीम की ऑपरेशन सेफ्टी सर्वे रिपोर्ट में रेफ्रिजरेशन सिस्टम बंद करने के फैसले पर कुछ नहीं कहा गया, स्पष्ट विरोध नहीं किया गया। यानी सामान्य वायुमंडलीय तापमान पर मिक जमा था। दो–तीन साल पहले हल्का–फुल्का रिसाव और एक–दो मौतें हो चुकी थीं। मिक काफी जहरीकी गैस के रूप में जानी जाती है। और यह यूनियन कार्बाइड कारखाना मध्यप्रदेश द्वारा प्रदत्त लीज की जमीन पर घनी आबादी के पास स्थापित था।

गैस रिसाव की घटना के बाद यूसीसी (अमेरिका) (यूसीसी की एक सहायक कंपनी है यूसीआइएल) के चेयरमैन वारेन एंडरसन को गिरफ्तार किया गया। जनसत्ता में छपी एक छोटी खबर तो यह बताती है कि उन्हें स्थानीय थाने से ही छोड़ दिया गया। अन्य खबर के मुताबिक एंडरसन को 7 दिसम्बर, 1984 को सीजेएम, भोपाल ने जमानत दे दी। 8 दिसम्बर को एंडरसन (सरकारी विमान पर) दिल्ली होते हुए अमेरिका उड़ गये। दस्तावेज तथा प्रशासनिक अधिकारियों एवं पायलट के बयान बताते हैं कि

तत्कालीन कांग्रेसी मुख्यमंत्री अर्जुन सिंह के पहल और आदेश से यह संभव हुआ। अर्जुन सिंह ने संभवतः तब यह कहा था कि हमें किसी अभियुक्त को परेशान नहीं करना है। तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गाँधी पर भी उंगली उठनी ही थी। उठी भी! अब सारे कॉंग्रेसी राजीव गाँधी को पाक–साफ बताने पर उतर आये हैं। पर इस आरोप का दलदल इतना सच्चा और पक्का है कि कॉंग्रेसी राजीव गाँधी को जितना उबारने की कोशिश कर रहे हैं उतना ही गहरे धंसाते रहे हैं। बेवकूफ से बेवकूफ पब्लिक भी यह समझती है कि कोई मुख्यमंत्री प्रधानमंत्री की सहमति के बिना (असल में निर्देश के बिना) इतने बड़े आदमी को इतनी बड़ी दुर्घटना में फँसने के बाद वाया दिल्ली अमेरिका भेज ही नहीं सकता। भारतीय राजनीति में, खासकर कॉंग्रेस की राजनीति में न तो मुख्यमंत्री इतना दुस्साहसी होता है और न ही प्रधानमंत्री (केन्द्र सरकार), वह भी नेहरू खानदान का, इतना अंधा और कमजोर होता है। खबरें तो ये भी आयी हैं कि उस वक्त के अमेरिकी राष्ट्रपति ने सीधे भारतीय प्रधानमंत्री से एंडरसन को वापस अमेरिका भेजने के लिये कहा था।

एंडरसन और कंपनी पर सरकार और उसकी एजेंसियों और अन्य अंगों का गरम रूख तब से लेकर अब तक दिखता रहा है। केन्द्र सरकार ने यूसीसी से 3. 3 बिलियन (330 करोड़) डालर का हरजाना या मुआवजा माँगा था। 1989 में सुप्रीम कोर्ट की पहल तथा प्रेरणा एवं केन्द्र सरकार की रहस्यमयी सहमति से माँगी गयी रकम के सातवें हिस्से 470 मिलियन (47 करोड़) डालर पर मुआवजे का निपटारा हो गया। सुप्रीम कोर्ट इस मामले में बार–बार लम्बी छलांगें लेता रहा। अभियुक्तों के खिलाफ सारे आपराधिक मामलों को भी समाप्त कर दिया। इस निपटारे के खिलाफ रिव्यू पिटीशन दायर होने और कानूनी अभियान चलने के बाद 1991 में सुप्रीम कोर्ट ने फिर से अभियुक्तों के खिलाफ कानूनी कार्यवाही शुरू रखने का फैसला लिया।

8 अप्रैल 1993 को एडीशनल सेशन जज भोपाल ने नौ भारतीय अभियुक्तों पर हत्या की कोटि में न आने वाले मानव वध (आईपीसी धारा 304 II के अंतर्गत) का आरोप तय किया। अभियुक्त इसके खिलाफ जबलपुर हाईकार्ट गये। अगस्त, 1995 को हाईकोर्ट ने अभियुक्तों की याचिका खारिज कर दी। तब अभियुक्त सुप्रीम कोर्ट गये। सुप्रीम कोर्ट ने 1996 में निर्देश दिया कि अभियुक्तों पर हत्या की कोटि में न आनेवाले मानव वध (आईपीसी 304 II) की जगह मौत का कारण बननेवाले दुस्साहसी एवं उपेक्षापूर्ण कृत्य का मामला (आईपीसी धारा 304 ए के अंतर्गत) बनाया जाये। 304 II में दस साल की सजा और 304 ए में दो साल की सजा होती है। सीबीआइ ने पुनरीक्षण याचिका दर्ज नहीं की और सुप्रीम कोर्ट के निर्देश के अनुसार आरोप बदल लिया। भोपाल गैस पीड़ित संघर्ष सहयोग समिति ने इस निर्देश के विरोध में याचिका दायर की। 10 मार्च, 1997 को बिना कारण बताये इस याचिका को सुप्रीम कोर्ट ने रद्द कर दिया।

2001 में अमेरिकी कंपनी डो केमिकल्स ने यूसीसी को खरीद लिया। आज यूसीआइएल भोपाल पर डो केमिकल्स की भारतीय शाखा का स्वामित्व है। जाहिर है, मध्यप्रदेश सरकार और भारत सरकार को इस खरीद–बिक्री या अधिग्रहण पर कोई आपत्ति नहीं थी। यूसीआइएल मध्यप्रदेश सरकार द्वारा लीज दी गयी जमीन पर है। एक बार सीजेएम अदालत ने यूसीसी की परिसम्पत्ति खरीदने वाले डो केमिकल्स पर हादसे से संबंधित कुछ जिम्मेवारी तय करने हेतु नोटिस देना तय किया। कंपनी ने हाईकोर्ट जबलपुर में इस इरादे को चुनौती दी और हाईकोर्ट ने कंपनी के पक्ष में स्थगनादेश दे दिया। हादसे के दुष्प्रभाव को कम करने के उपायों पर सोचने के लिये केन्द्र सरकार ने एक मंत्री–समूह गठित किया था। डो केमिकल्स आरंभ से ही इस खरीद के कारण मिलने वाली स्वाभाविक जिम्मेवारियों से पल्ला झाड़ रहा था। वह परिसर के अंदर के जहरीले कचरे की सफाई की जिम्मेवारी से बच रहा था। उस वक्त के भोपाल विषयक मंत्री समूह के दो प्रभावशाली सदस्य चिदम्बरम (उस वक्त वित्तमंत्री और नवगठित मंत्री समूह के अध्यक्ष) और कमलनाथ (उस वक्त वाणिज्य

मंत्री) ने खुलकर डो केमिकल्स के पैरवीकारों की भूमिका निभायी। दोनों ने अलग–अलग पत्र लिखकर निवेश के वातावरण का हवाला देते हुए डो केमिकल्स को कचरा सफाई और अन्य उपचारात्मक जिम्मेवारियों से मुक्त रखने की सलाह दी। रतन टाटा ने भी निवेश आयोग के सदस्य की हैसियत से डो केमिकल्स की गैर–जिम्मेवार इच्छा का समर्थन किया। इन सबने इन कार्यों के लिये अलग निधि स्थापित करने की सलाह दी।

जनता के दबाव पर अभी इस मामले पर जो नया मंत्रीसमूह गठित किया गया है वह अदालती फैसले के बाद देखने में नया और विशेष पहल लग रहा है। मंत्री–समूह ने तेजी से काम किया। (राजनैतिक दबाव में, सरकार चाहे तो कितनी तेजी से फैसले ले सकती है और नहीं चाहे तो कितना लंबा खींच सकती है, इसका यह एक अच्छा उदाहरण है)। मंत्री–समूह ने अपनी रपट दे दी है। सरकार ने उन अनुशंसाओं को मान भी लिया है। पर अधिकांश अनुशंसाओं में खोट है। भोपाल के सक्रिय सामाजिक संगठनों ने खोट का खुलासा भी कर दिया है। चिदम्बरम ने अपनी पुरानी राय को मंत्री समूह का फैसला बना दिया है। न्याय का न्यूनतम तकाजा तो यह था कि डो केमिकल्स यूसीआइएल परिसर के दायित्वों की पूरी जिम्मेवारी लेती। पर मंत्री समूह ने परिसर और परिवेशीय विषाक्तता की सफाई के लिये केन्द्र सरकार को पूरी जिम्मेवारी देने की तथा इस पर 300 करोड़ रु. खर्च करने तथा सफाई के क्रियान्वयन का जिम्मा मध्यप्रदेश सरकार को देने की बात कही है। भोपाल मेमोरियल ट्रस्ट के अस्पताल के आधुनिकीकरण पर 230 करोड़ रु. खर्च करने की अनुशंसा की है। मंत्री समूह सीजेएम अदालत के फैसले को अगले कोर्ट में ले जाने और एंडरसन के प्रत्यर्पण की कोशिश भी करना चाहता है।

यह साफ–साफ दिखता है, कोई भी सरकार हादसा और गैस–पीड़ितों पर गंभीर नहीं रही है। केन्द्र में 1984 के बाद गैरकाँग्रेसी सरकारें भी बनीं, मध्यप्रदेश में तो भाजपा शासन पर जम गयी है। इन्होंने क्या किया? आज भी गलत ही हो रहा है। जनता का पैसा लगाकर पूंजीपतियों का दायित्व सरकार स्वयं पूरा कर रही है। कुछ अच्छी बातें हो रही हैं तो जनदबाव में, अपनी गिरती छवि को बचाने के लिये। जब लोग चुप हो जायेंगे, सरकार की अच्छी बातें भी चुप हो जायेंगी।

इस घटना से झारखण्ड की जिन्दगी और धरती का सीधा रिश्ता है। झारखण्ड में कारखाने लगाने की सनक सरकार और पूँजीपतियों पर सवार है। विदेशी कम्पनियाँ भी आ रही हैं। अंधाधुंध औद्योगीकरण और स्पंज आयरन कारखानों में पर्यावरणीय कानूनों के खुल्लमखुल्ला उल्लंघन को देखते हुए कहा जा सकता है कि ऐसे हादसे खूब होंगे, और वे भोपाल हादसे से भी बुरे हो सकते हैं। लेकिन सरकार को तो सिर्फ "विकास" और जीडीपी की फिक्र है! जान–जान की कीमत आज अलग–अलग है। अमेरिका में तेल रिसाव से हुई जान–माल की क्षतिपूर्ति के लिए अमेरिकी राष्ट्रपति पूरी सख्ती बरत रहा है। लेकिन उसे भोपाल की मौतों का इतना गम नहीं कि दोषी एंडरसन को भारत की न्यायप्रणाली के हवाले कर दे। चिदम्बरम, कमलनाथ, रतन टाटा को लोगों की जिंदगियों को खतरे से बचाने से ज्यादा फिक्र निवेश के वातावरण और पूँजीपतियों को प्रोत्साहन देने की है। जब भोपाली जानों की इन्हें फिक्र नहीं तो झारखण्डी जानों की क्या फिक्र होगी। झारखण्डी तो हर तरह से ज्यादा उपेक्षित हैं।

इस कारण भोपाल के पीड़ित लोगों के हक में झारखण्ड से भी जोरदार आवाज उठनी चाहिए। भोपाल की घटना से सबक लेते हुए औद्योगीकरण, खासकर विदेशी पूँजी के जहरीले आगमन, के खिलाफ ज्यादा से ज्यादा बड़ी लड़ाई होनी चाहिए। आज स्पांज आयरन के जहरीले प्रदूषण को आप अनदेखा करते रहेंगे तो इन बड़े हत्यारों के लिए वह आमंत्रण ही होगा।

–मंथन

चांडिल बाँध में रेडियल गेट लगाने का विरोध

जून महीने के प्रथम सप्ताह में झारखंड एवं उड़ीसा के जल संसाधन विभाग के सचिवों ने सुवर्णरेखा बहूद्देशीय परियोजना क्षेत्र का दौरा किया। इसी दौरान जल संसाधन सचिव आर.एस. पोद्दार ने घोषणा की कि चांडिल बाँध का रेडियल गेट 30 जून तक बंद कर दिया जाएगा। साथ ही उन्होंने दावा किया कि विस्थापितों के पुनर्वास का काम 85 प्रतिशत सम्पन्न हो चुका है। इस खबर से विस्थापित इलाके में खलबली मच गयी है क्योंकि सचिव ने विस्थापितों से कहा है कि वे पुनर्वास स्थलों पर चले जायें।

सचिव का यह आदेश ऐन मॉनसून के वक्त आया है। 10–15 दिनों के अंदर कोई परिवार अपने घर-बार को कैसे शिफ्ट कर सकेगा? आदेश देते वक्त सचिव को विचार करना चाहिए था। इसके अलावा, विभाग विस्थापितों से डूब क्षेत्र से हटने के लिए तभी कह सकता है, जब वह अपने सभी पुनर्वास दायित्वों को पूरा कर ले। बिना पुनर्वास के विस्थापितों को हटाया नहीं जा सकता है। देखें, पुनर्वास की क्या स्थिति है। चांडिल बाँध से 14,931 परिवार विस्थापित होने वाले हैं जिनमें 12,559 परिवारों को विकास पुस्तिकाएं (विस्थापितों के पहचान-पत्र) मिल चुकी हैं। इनमें से 6312 परिवारों को भूमि क्रय अनुदान राशि का भुगतान किया गया है। 5711 परिवारों को जीवन निर्वाह भत्ता दिया गया है। 85 प्रतिशत पुनर्वास का दावा गृह निर्माण अनुदान से संबंधित है। इन आँकड़ों के अनुसार आधे से भी कम परिवारों को पुनर्वास पैकेज मिला है। ऐसी स्थिति में विभाग का पहला जिम्मा है कि वह पुनर्वास पैकेज का युद्ध स्तर पर भुगतान करे और तब गेट लगाने की सोचे।

विस्थापित मुक्ति वाहिनी, छात्र-युवा संघर्ष वाहिनी, जनमुक्ति संघर्ष वाहिनी एवं झारखण्ड मुक्ति वाहिनी ने इन सब सवालों को उठाते हुए मुख्य अभियंता, चांडिल कॉम्प्लेक्स, को प्रेषित ज्ञापन में सचिव, चांडिल बाँध के अधीक्षण अभियंता से मिलकर सौंपा गया तथा मांग की गयी कि तुरंत विस्थापित प्रतिनिधियों के साथ बैठक कर मामले का निपटारा किया जाये। इसी के आलोक 18 जून को मुख्य अभियंता के कार्यालय में एक बैठक हुई जिसमें सभी विभागीय पदाधिकारी तथा विस्थापित एवं संगठनों के प्रतिनिधि शामिल हुए।

वाहिनी की ओर से एक स्मारपत्र सौंपा गया जिसमें यह बताया गया कि एक सत्याग्रह कार्यक्रम के जरिये परियोजना के साथ विमुवा का एक समझौता (पत्रांक-216, दिनांक 4–3–2001) हो चुका है जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है- "जबतक पुनर्वास की समस्याओं का समाधान नहीं कर लिया जाता तब तक वर्त्तमान जल स्तर (समुद्रतल से 177 मी ऊँचा) से ऊपर जल का भंडारण नहीं किया जाएगा। पर अभी विभागीय घोषणा है कि 177 मी. से ऊपर और 5 मीटर अर्थात 182 मी. तक जल-भंडारण किया जाएगा। उपयोगिता की दृष्टि से देखा जाय तो बाँध में इस जल-स्तर तक पानी जमा करने का औचित्य नहीं है क्योंकि नहर निर्माण का काम अधूरा पड़ा हुआ है। इसलिए सिंचाई के लिए संचित पानी का उपयोग नहीं हो पाएगा। उद्योगों व नागरिक आपूर्ति के लिए मौजूदा क्षमता ही पर्याप्त है।

मुख्य अभियंता के साथ बातचीत एवं स्मारपत्र में यह सवाल भी उठाया गया कि विस्थापितों को मिलनेवाले पुनर्वास पैकेज को मूल्यवृद्धि के अनुसार बढ़ाया जाये। झारखण्ड सरकार द्वारा 2008 में घोषित पुनर्वास नीति में यह प्रावधान भी था। अभी का पैकेज 2003 में पुनरीक्षित हुआ था। सरकारी विभाग के कर्मियों के लिए हर साल महंगाई भत्ता बढ़ायी जाती है। स्मारपत्र में नौकरी के लिए बने 1400 अभ्यर्थियों के पैनल के बारे में स्पष्टीकरण देने तथा चांडिल बाँध के चारों तरफ गांवों के लिए लिफ्ट इरिगेशन और डीप बोरिंग द्वारा सिंचाई की व्यवस्था करने की माँग की गई है।

बातचीत के दौरान जब मुख्य अभियंता ने पुनर्वास पदाधिकारियों से पूछा कि पुनर्वास पूरा करने की समय सीमा जाननी चाही तो वे कोई स्पष्ट जवाब नहीं दे सके, परन्तु उन्होंने स्वीकारा कि 30 जून तक पुनर्वास पूरा करना संभव नहीं है। उन्होंने कहा कि वर्त्तमान कार्यालय क्षमता को बढ़ाने की जरूरत है। स्पष्ट है कि 30 जून तक पुनर्वास नहीं हो सकेगा। ऐसी स्थिति में गेट नहीं लगाया जा सकता है।

विभाग द्वारा घोषित 30 जून की समय सीमा का दिन हूल दिवस भी है। उस दिन चांडिल बाँध के अधीक्षण अभियंता कार्यालय के सामने विस्थापितों का विशाल धरना दिया जाएगा।

अरविंद अंजुम